संगीता सहाय

पटना, बिहारी

आत्मनिर्भरता के संदर्भ और स्त्री

आत्मनिर्भरता शब्द अपने आप में कई तथ्यों को समेटे हुए है। उपरोक्त शब्द के विशद विवेचन के क्रम में सर्वप्रथम इस शब्द को सही तरीके से समझने की आवश्यकता है। आत्मनिर्भरता का सामान्य अर्थ है, 'स्वयं पर निर्भर होना'। इसे यूं भी कह सकते हैं कि जो लोग अपनी सामान्य जरूरतों को अपने खुद के प्रयासों से पूरा करने में सक्षम हैं, वो आत्मनिर्भर की श्रेणी में आ जाते हैं। इसी को संदर्भ बनाते हुए कहा जा सकता है कि अबोध बालकों, वृद्ध और कुछ खास व्याधियों एवं आलस की प्रवृति से ग्रस्त लोगो के अलावा सामान्यत: सभी लोग चाहे वह स्त्री हो या पुरूष वो आत्मनिर्भर हैं। साथ ही यह भी ध्यान देने की जरूरत है कि कोई देश या समाज तो पूर्ण या सीमित स्तरों पर आत्मनिर्भर तो हो सकता है, परंतु कोई भी व्यक्ति पूर्ण आत्मनिर्भर नहीं हो सकता। वह कुछेक मामलों में स्वयं पर निर्भर तो कुछ के लिए दूसरे पर आश्रित रहता ही है। अर्थात आत्मनिर्भरता और पराश्रिता दोनों शब्द साथ–साथ ही चलते हैं। यह एक प्राकृतिक नियम है। हमारे समाज का केंद्र बिन्दु परिवार ही होता है। इसी के इर्द–गिर्द लगभग शेष सारी संरचनाएं काम करती हैं। एक परिवार माता–पिता, भाई–बहन, दादा–दादी और कुछ अन्य नाते–रिस्तेदारों के योग से बनता है। आज के एकल परिवार के दौर में इसका आकार कुछ छोटा भी हुआ है। परंतु दोनों ही स्वरूपों में परिवार की धूरी में दो लोग ही होते हैं – एक सदस्य के ऊपर गृहस्थी के संचालन की ज़िम्मेदारी होती है, तो दूसरा उस कार्य के लिए धनोपार्जन करता है। समान्यतया आर्थिक उपार्जन के लिए पुरूष गतिविधियां करता है और स्त्री गृहस्थी के संचालन का कार्य करती है। संभव है, कुछ स्थितियाँ इसके विपरीत भी हों। अत: स्वाभाविक रूप से कहा जा सकता है कि दोनों की ज़िम्मेदारी समान रूप से अपने–अपने स्थान पर महत्वपूर्ण है। एक की भी अनुपस्थिति परिवार रूपी गाड़ी को डांवाडोल कर सकती है। ये भी कहा जा सकता है कि इस इकाई की दोनो ही धूरियां अपने आप में आत्मनिर्भर भी हैं और एक दूसरे पर आश्रित भी।

अब प्रश्न यह है, कि प्रचलित संदर्भों में आत्मनिर्भरता को किस रूप में देखा जाता है? तो कहा जा सकता है कि प्रचलित अर्थ में इसके एक ही मायने होते हैं और वो है, 'आर्थिक आत्मनिर्भरता।' दोनों शब्द लगभग प्रयायवाची बन चुके हैं। जैसे ही हम आत्मनिर्भर शब्द को उच्चारित करते हैं, वह आर्थिक आत्मनिर्भता का ही बोध कराता है। जबकि यह आत्मनिर्भता के कई उपादानों में से एक है। जैसे कोई

शैक्षणिक रूप से, शारीरिक क्षमता से, गृहकार्य में, किसी कला या व्यवसाय आदि में से किसी एक में या कई विषयों में एक साथ आत्मनिर्भर और पारंगत हो सकता है, वैसे ही कोई धन की कमाई में भी पा

उपरोक्त प्रचलित अर्थों के अनुसार ही स्त्री के आत्मनिर्भरता को भी मूलत: आर्थिक आत्मनिर्भरता से जोड़ दिया गया। इस सोच ने न सिर्फ औरत के कामों का अवमूल्यन किया बल्कि उसके अस्तित्व को ही दोयम बना दिया। दिन के सोलह–सोलह घंटे घरेलू कामों में लगी औरत भी घरेलू और सामाजिक रूप से आश्रित और अक्रियाशील मानी जाने लगी। फलस्वरूप उसके कर्तव्यों की फेरहिस्त लंबी होती गई और अधिकार कम होते गए। ईंट–गारे से बने चहारदीवारों को घर का स्वरूप देने वाली औरत के मालिकाने हक़ में वो घर भी न रहा। सामाजिक विसंगतियों की जाल तले पिता की संपत्ति से 'वास्तविक रूप' से बेदखल (कानूनी हक़ के बावजूद) स्त्री, ससूराल में भी दूजे घर से आयी मेहमान की हैसियत से ही दो–चार होती रही। और उधार में मिले उपनामों को बदलती कभी पिता और कभी पति की कृपापात्र बनी अपने वजूद की तलाश में गुम होती रही। बदलते वक्त ने जब उसे समझाया कि सम्मान और पहचान का रास्ता 'अर्थ' से होकर गुजरता है, तो वह चाहे, अनचाहे खुद को साबित करने के लिए उसी बदले आत्मनिर्भरता की दौर में शामिल होती गई। ध्यान देने कि बात ये है कि तमाम जद्दोजहद के बाद भी देश की मात्र 27% महिला आबादी ही कामकाजी है। इसमें भी ग्रामीण क्षेत्र की महिलाओं की भागीदारी बड़ी है, जो कि ज्यादात्तर कृषि और अकुशल कार्यों में लगी हैं। अब प्रश्न ये है, कि क्या शेष महिलाओं को पराश्रित और असक्षम मान लिया जाना चाहिए? ये भी, कि जिन उद्देश्यों की प्राप्ति के लिए 'अपने आप में सक्षम स्त्री' अपने ऊपर असक्षम होने का ठप्पा लगवाकर आर्थिक रूप से सक्षम होने की दिशा में बढ़ी, क्या उसे उन राहों की बदौलत मुक्ति और विकास की राहें हासिल हो पायीं? और क्या उसकी आर्थिक सक्षमता ने एक पूर्ण समतामूलक समाज का निर्माण किया है? स्त्री को दोयम बनाती जड़

स्त्री को दोयम बनाती जड़ परम्पराओं और मान्यताओं का छीजन क्या इसके माध्यम से हुआ? क्या स्त्री–पुरूष समानता के मान्य और सहज प्राकृतिक सिद्धान्त को दुबारा सिद्ध करने मात्र के लिए स्त्री के भूमिका में परिवर्तन की आवश्यकता है?

ध्यातव्य है, मैं ये बातें उन लड़कियों और महिलाओं के लिए नहीं कर रही जिन्होंने अपनी इच्छा और पसंद के अनुसार सहज आत्मवृति के रूप में नौकरी या अन्य आर्थिक आत्मनिर्भरता साधनो को चुना है। बल्कि यह सवाल उन औरतों के संदर्भ में है जिन्होंने आत्मनिर्भरता के कुंठित विवेचना की शिकार होकर अपने मन के विपरीत जाकर बेमेल रास्तों को चुना और दोहरे कामों के बोझ तले पीस रही हैं। और अकसरहां उनके तीस दिनों के अथक कामों से प्राप्त धन पर पति या अन्य लोगों का मालिकत्व ही रहता है। क्योंकि वो पैसे के रख–रखाव के लिए अयोग्य करार दी जाती हैं। ए.टी.एम. कार्ड रखने की वो हकदार उन्हें नहीं होती और चंद नोटों और सिक्कों को संभालने के लिए मनीबैग रखने को वो स्वयं ही फ़ीजूलखर्ची मानती है। ये 'आर्थिक रूप से सक्षम औरतें' अकसर हमारे आपके गलियों, मोहल्लों में धुंधलाती शाम तले अपने कांधे पर सामानों के बोझ को लादे, चप्पलें चटकाती घरों की ओर भागती दिख जाती हैं। क्योंकि घर पहुँचकर उन्हें परिवार का खाना भी बनाना होता है। अथक कामों के बोझ से

लदी ये औरते अपनी कथित आत्मनिर्भरता का दंश जीवन भर झेलती हैं। यह सत्य है कि उनकी कमाई से घर में पैसे और भौतिक संसाधनों की बढ़ोत्तरी होती है। परंतु उसके बदले में उन्हें क्या हासिल होता है, यह प्रश्न भी विचारणीय है? सवाल घरेलू जीवन जीती उन अधिसंख्य स्त्रियों को लेकर भी है, जो वगैर कोई अपराध किए आत्मनिर्भरता के इस एकपक्षीय सोच का अपमानजनक मार झेल रही हैं। इन प्रश्नों के जबाब में आर्थिक रूप से सक्षम महिलाओं के जीवन में आए विकासात्मक बदलाव की बात की जा सकती है। इसने सदियों से शोषित और रीढ़–हीन परम्पराओं का मारक प्रहार झेलती औरतों के दशा और दिशा की बेहतरी में भी महत्वपूर्ण भूमिका निभाई है। यह भी सही है कि आर्थिक सक्षमता की जिजीविषा ने आधी आबादी के विकास के कई रास्ते खोले है और वो सारे दुरूह मान्य – अमान्य सीमाओं को लांघती अपने लक्ष्य को भेद अपना मक़ाम बना रही है। इन तमाम बातों के बावजूद मेरा प्रश्न अभी भी पूर्ववत ही है। क्योंकि ये सफलताएँ उन्होंने ही हासिल किया जिन्होंने इसका स्वप्न देखा और कोशिशे की। पर उनकी सफलता का दंड उन्हें तो हरगिज नहीं मिलना चाहिए जिन्होंने सामान्य घरेलू जीवन का स्वप्न देखा और अपनाया। और न ही उनके चुनाव और पसंद को कमजोरी और अपमान का प्रयाय माना चाहिए। हर इंसान को अपनी इच्छानुसार कार्य करने और जिंदगी जीने का मौका मिलना ही उसके स्वतंत्र होने का परिचायक है।

शिक्षा व्यक्ति मात्र के लिए आवश्यक है। वगैर किसी भेदभाव के उस तक सबकी पहुँच विकास की पहली और आखिरी शर्त है। परन्तु शिक्षा का अर्थ महज डिग्रीयाँ बटोर कर ऊंची नौकरी हासिल करना और पैसे कमाने की मशीन बनना नहीं होता। शिक्षा मनुष्य के भीतर मनुष्यता के विकास के लिए आवश्यक है। उसके समझ, बुद्धि और कौशल के उन्नयन के लिए आवश्यक है। साथ ही वह अपनी योग्यता और कर्मठता से अपनी पसंद के कार्यक्षेत्र को चुन कर अपनी बेहतर क्षमता का प्रदर्शन कर सके इसके लिए आवश्यक है। इसी को संदर्भ बनाते हुए कहा जा सकता है, कि स्त्री के शिक्षित होने का मतलब भी सिर्फ अर्थ की प्राप्ति नहीं है, बल्कि जीवन की राहों की बेहतरी के लिए शिक्षा आवश्यक है। आत्मनिर्भरता का सही और सार्थक अर्थ भी इसी में छूपा है।